गुरु और माता-पिता
के
भक्त बालक

श्रीहरिः

विषय-सूची

विषय पृष्ठ-संख्या

श्रीहरिः

गुरु और माता-पिताके भक्त बालक

गुरुभक्त बालक आरुणि

महर्षि आयोदधौम्यके तीन शिष्य बहुत प्रसिद्ध हैं— आरुणि, उपमन्यु और वेद। इनमेंसे आरुणि अपने गुरुदेवके सबसे प्रिय शिष्य थे और सबसे पहले सब विद्या पाकर यही गुरुके आश्रमके समान दूसरा आश्रम बनानेमें सफल हुए थे। आरुणिको गुरुकी कृपासे सब वेद, शास्त्र, पुराण आदि बिना पढ़े ही आ गये थे। सच्ची बात यही है कि जो विद्या गुरुदेवकी सेवा और कृपासे आती है, वही विद्या सफल होती है। उसी विद्यासे जीवनका सुधार और दूसरोंका भी भला होता है। जो विद्या गुरुदेवकी सेवाके बिना पुस्तकोंको

पढ़कर आ जाती है, वह अहंकारको बढ़ा देती है। उस विद्याका ठीक-ठीक उपयोग नहीं हो पाता।

महर्षि आयोदधौम्यके आश्रममें बहुत-से शिष्य थे। वे सब अपने गुरुदेवकी बड़े प्रेमसे सेवा किया करते थे। एक दिन शामके समय वर्षा होने लगी। वर्षाकी ऋतु बीत गयी थी। आगे भी वर्षा होगी या नहीं, इसका कुछ ठीक-ठिकाना नहीं था। वर्षा बहुत जोरसे हो रही थी। महर्षिने सोचा कि कहीं अपने धानके खेतकी मेड़ अधिक पानी भरनेपर टूट जायगी तो खेतमेंसे सब पानी बह जायगा। पीछे फिर वर्षा न हो तो धान बिना पानीके सूख ही जायँगे। उन्होंने आरुणिसे कहा—'बेटा आरुणि! तुम खेतपर जाओ और देखो, कहीं मेड़ टूटनेसे खेतका पानी निकल न जाय।'

अपने गुरुदेवकी आज्ञासे आरुणि उस समय वर्षामें भीगते हुए खेतपर चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि धानके खेतकी मेड़ एक स्थानपर टूट गयी है और वहाँसे बड़े जोरसे पानी बाहर जा रहा है। आरुणिने वहाँ मिट्टी रखकर मेड़ बाँध देना चाहा। पानी वेगसे निकल रहा था और वर्षासे मिट्टी गीली हो गयी थी, इसलिये आरुणि जितनी मिट्टी मेड़ बाँधनेको रखते थे, उसे पानी बहा ले जाता था। बहुत देर परिश्रम करके भी जब आरुणि मेड़ न बाँध सके

तो वे उस टूटी मेड़के पास स्वयं लेट गये। उनके शरीरसे पानीका बहाव रुक गया।

रातभर आरुणि पानीभरे खेतमें मेड़से सटे सोये पड़े रहे। सर्दीसे उनका सारा शरीर अकड़ गया, लेकिन गुरुदेवके खेतका पानी बहने न पावे, इस विचारसे वे न तो तनिक भी हिले और न उन्होंने करवट बदली। शरीरमें भयंकर पीड़ा होते रहनेपर भी वे चुपचाप पड़े रहे।

सवेरा होनेपर संध्या और हवन करके सब विद्यार्थी गुरुदेवको प्रणाम करते थे। महर्षि आयोदधौम्यने देखा कि आज सवेरे आरुणि प्रणाम करने नहीं आया। महर्षिने दूसरे विद्यार्थियोंसे पूछा—'आरुणि कहाँ है?'

विद्यार्थियोंने कहा—'कल शामको आपने आरुणिको खेतकी मेड़ बाँधनेको भेजा था, तबसे वह लौटकर नहीं आया।'

महर्षि उसी समय दूसरे विद्यार्थियोंको साथ लेकर आरुणिको ढूँढ़ने निकल पड़े। उन्होंने खेतपर जाकर आरुणिको पुकारा। आरुणिसे ठंडके मारे बोलातक नहीं जाता था। उन्होंने किसी प्रकार अपने गुरुदेवकी पुकारका उत्तर दिया। महर्षिने वहाँ पहुँचकर उस आज्ञाकारी शिष्यको उठाकर हृदयसे लगा लिया, आशीर्वाद दिया—'पुत्र आरुणि! तुम्हें सब विद्याएँ

अपने आप ही आ जायँ !' गुरुदेवके आशीर्वादसे आरुणि बड़े भारी विद्वान् हो गये ।

गुरुभक्त बालक उपमन्यु

महर्षि आयोदधौम्य अपनी विद्या, तपस्या और विचित्र उदारताके लिये बहुत प्रसिद्ध हैं। वे ऊपरसे तो अपने शिष्योंसे बहुत कठोरता करते प्रतीत होते थे; किंतु भीतरसे शिष्योंपर उनका अपार स्नेह था। वे अपने शिष्योंको अत्यन्त सुयोग्य बनाना चाहते थे। इसलिये जो ज्ञानके सच्चे जिज्ञासु थे, वे महर्षिके पास बड़ी श्रद्धासे रहते थे। महर्षिके शिष्योंमेंसे एक बालकका नाम था उपमन्यु। गुरुदेवने उपमन्युको अपनी गायें चरानेका काम दे रक्खा था। वे दिनभर वनमें गायें चराते और सायंकाल आश्रममें लौट आया करते। एक दिन गुरुदेवने पूछा—'बेटा उपमन्यु! तुम आजकल भोजन क्या करते हो?'

उपमन्युने नम्रतासे कहा—'भगवन् ! मैं भिक्षा माँगकर अपना काम चला लेता हूँ ।'

महर्षि बोले—'वत्स ! ब्रह्मचारीको इस प्रकार भिक्षाका अन्न नहीं खाना चाहिये । भिक्षा माँगकर जो कुछ मिले, उसे गुरुके सामने रख देना चाहिये । उसमेंसे गुरु यदि कुछ दे दें तो उसे ग्रहण करना चाहिये ।'

उपमन्युने महर्षिकी आज्ञा स्वीकार कर ली । अब वे भिक्षा माँगकर जो कुछ मिलता, उसे गुरुदेवके सामने लाकर रख देते । गुरुदेवको तो शिष्यकी श्रद्धाको दृढ़ करना था, अतः वे सब भिक्षाका अन्न रख लेते । उसमेंसे कुछ भी उपमन्युको नहीं देते । थोड़े दिनों पीछे जब गुरुदेवने पूछा—'उपमन्यु ! तुम आजकल क्या खाते हो ?' तब उपमन्युने बताया कि 'मैं एक बारकी भिक्षाका अन्न गुरुदेवको देकर दुबारा अपने लिये भिक्षा माँग लाता हूँ ।' महर्षिने कहा—दुबारा भिक्षा माँगना तो धर्मके विरुद्ध है । इससे गृहस्थोंपर अधिक भार पड़ेगा और दूसरे भिक्षा माँगनेवालोंको भी संकोच होगा । अब तुम दूसरी बार भिक्षा माँगने मत जाया करो ।'

उपमन्युने कहा—'जो आज्ञा ।' उसने दूसरी बार भिक्षा माँगना बंद कर दिया । जब कुछ दिनों बाद महर्षिने फिर पूछा, तब उपमन्युने बताया कि 'मैं गायोंका दूध पी लेता हूँ ।'

महर्षि बोले—'यह तो ठीक नहीं है। गायें जिसकी होती हैं, उनका दूध भी उसीका होता है। मुझसे पूछे बिना गायोंका दूध तुम्हें नहीं पीना चाहिये।'

उपमन्युने दूध पीना भी छोड़ दिया। थोड़े दिन बीतनेपर गुरुदेवने पूछा—'उपमन्यु! तुम दुबारा भिक्षा भी नहीं लाते और गायोंका दूध भी नहीं पीते तो खाते क्या हो? तुम्हारा शरीर तो उपवास करनेवाले-जैसा दुर्बल नहीं दिखायी पड़ता।'

उपमन्युने कहा—'भगवन्! मैं बछड़ोंके मुखसे जो फेन गिरता है, उसे पीकर अपना काम चला लेता हूँ।'

महर्षि बोले—'बछड़े बहुत दयालु होते हैं। वे स्वयं भूखे रहकर तुम्हारे लिये अधिक फेन गिरा देते होंगे। तुम्हारी यह वृत्ति भी उचित नहीं है।'

अब उपमन्यु उपवास करने लगे। दिनभर बिना कुछ खाये गायोंको चराते हुए उन्हें वन-वनमें भटकना पड़ता था। अन्तमें जब भूख असह्य हो गयी, तब उन्होंने आकके पत्ते खा लिये। उन विषैले पत्तोंका विष शरीरमें फैलनेसे वे अंधे हो गये। उन्हें कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता था। गायोंके चलनेका शब्द सुनकर ही वे उनके पीछे चल रहे थे। मार्गमें एक जलरहित कुआँ पड़ा और उपमन्यु उसमें

गिर पड़े। जब अँधेरा होनेपर सब गायें लौट आयीं और उपमन्यु नहीं लौटे, तब महर्षिको चिन्ता हुई। वे सोचने लगे—'मैंने उस भोले बालकका भोजन सब प्रकारसे बंद कर दिया। कष्ट पाते-पाते दुखी होकर वह भाग तो नहीं गया।' उसे वे जंगलमें ढूँढ़ने निकले और बार-बार पुकारने लगे—'बेटा उपमन्यु! तुम कहाँ हो?'

उपमन्युने कुएँमेंसे उत्तर दिया—'भगवन्! मैं कुएँमें गिर पड़ा हूँ।' महर्षि समीप आये और सब बातें सुनकर ऋग्वेदके मन्त्रोंसे उन्होंने अश्विनीकुमारोंकी स्तुति करनेकी आज्ञा दी। स्वरके साथ श्रद्धापूर्वक जब उपमन्युने स्तुति की, तब देवताओंके वैद्य अश्विनीकुमार वहाँ कुएँमें प्रकट हो गये। उन्होंने नेत्र अच्छे करके एक पूआ उपमन्युको देकर खा लेनेको कहा; किंतु उपमन्युने अपने गुरुदेवको अर्पित किये बिना वह पूआ खाना स्वीकार नहीं किया। अश्विनीकुमारोंने कहा—'तुम संकोच मत करो। तुम्हारे गुरुने भी अपने गुरुको अर्पित किये बिना पहले हमारा दिया पूआ प्रसाद मानकर खा लिया था।'

उपमन्युने कहा—'वे मेरे गुरु हैं, उन्होंने कुछ भी किया हो; पर मैं उनकी आज्ञाको नहीं टालूँगा।' इस गुरु-भक्तिसे प्रसन्न होकर अश्विनीकुमारोंने उन्हें समस्त विद्याएँ बिना पढ़े आ जानेका आशीर्वाद दिया। जब उपमन्यु कुएँसे

बाहर निकले, महर्षि आयोदधौम्यने अपने प्रिय शिष्यको हृदयसे लगा लिया ।

गुरुभक्त बालक उत्तङ्क

महर्षि आयोदधौम्यके शिष्य महर्षि वेदने अपने ब्रह्मचर्याश्रमके जीवनमें गुरुगृहमें अनेक कष्ट भोगे थे। उन कष्टोंका स्मरण करके अपने यहाँ अध्ययनके लिये आनेवाले किसी बालकको वे किसी कार्यमें नियुक्त नहीं करते थे और न उनसे अपनी सेवा ही लेते थे। उनके शिष्योंमें प्रधान थे उत्तङ्क। एक बार जब महर्षि वेद अपने आश्रमसे किसी यात्रापर जाने लगे, तब उन्होंने उत्तङ्कको अपनी अनुपस्थितिमें अपना समस्त कार्य सम्हालनेकी आज्ञा दी। महर्षि वेदकी

पत्नीके मनमें यह बात आयी कि इस थोड़ी अवस्थाके बालक-पर उनके पतिदेवने आश्रमका पूरा उत्तरदायित्व क्यों सौंपा। अतएव उन्होंने उत्तङ्ककी परीक्षा लेनेका विचार किया। ऋषिपत्नीने कहा—'उत्तङ्क! महर्षिने जाते समय तुम्हें आज्ञा दी है कि उनकी अनुपस्थितिमें उनके सभी कार्योंको सम्पन्न करो। मैं ऋतुमती हूँ, अतः तुम्हें मेरे ऋतुको सफल करने-का, महर्षिका कार्य भी पूरा करना चाहिये।'

उत्तङ्कने थोड़ी देर विचार करके बड़ी नम्रतासे प्रार्थना की—'आप मेरे गुरुदेवकी पत्नी हैं। आपकी आज्ञासे आपकी प्रसन्नताके लिये मैं अपना प्राण भी दे सकता हूँ; किंतु माता! आप मुझे ऐसा अनुचित काम करनेकी आज्ञा न दें; यह पाप मैं नहीं कर सकूँगा।'

उत्तङ्ककी दृढ़ श्रद्धा और संयम देखकर गुरुपत्नी प्रसन्न हो गयीं। जब महर्षि वेद लौटे, तब उनकी पत्नीने स्वयं उनसे सब बातें बतायीं; क्योंकि उन्होंने तो उत्तङ्ककी केवल परीक्षा लेना चाहा था। सब बातें सुनकर महर्षिने उत्तङ्कको आशीर्वाद दिया—'बेटा! तुम्हारी समस्त कामनाएँ पूर्ण हों। तुम्हें समस्त ज्ञान स्वतः प्राप्त हो जाय।'

अब उत्तङ्कने गुरुदेवको गुरुदक्षिणा देनेकी इच्छा प्रकट की। महर्षिने गुरुपत्नीसे पूछनेको कहा। पूछनेपर गुरुपत्नीने बताया कि महर्षिके दूसरे शिष्य राजा पौष्यकी पतिव्रता

पत्नीके कानोंमें जो अमृतस्रावी कुण्डल हैं, उन्हें पर्वके अवसर-पर मैं पहनना चाहती हूँ।' पर्वका समय केवल चार दिन शेष था। उत्तङ्क राजाके पास वह कुण्डल माँगने चल पड़े।

देवराज इन्द्रने देखा कि नागराज तक्षक बहुत दिनोंसे उन कुण्डलोंको हरण करना चाहता है। राजाकी पतिव्रता पत्नीके पाससे कुण्डलोंको लेनेका तो उसमें साहस नहीं, पर यदि उत्तङ्क उन कुण्डलोंको लेकर चले तो तक्षक किसी-न-किसी रूपमें अवश्य कुण्डलोंका हरण कर लेंगे। यद्यपि नागराज तक्षक इन्द्रके मित्र हैं, किंतु देवराज होनेके कारण इन्द्रको यह उचित जान पड़ा कि वे उत्तङ्ककी सहायता करें। एक संयमी, तपस्वी, गुरुभक्त ब्राह्मण-बालक यदि अपनी गुरुपत्नीको उनकी माँगी दक्षिणा न दे सके तो उसे कितना खेद होगा, यह देवराज जानते थे और यह भी जानते थे कि उस समय उस तेजस्वी बालकके क्रोधको शान्त करना सरल नहीं हो सकता। वह शाप देकर किसी भी लोकपालको पदच्युत कर सकता है। अतः इन्द्रने सहायता देनेका उपाय पहलेसे निश्चित कर लिया। उत्तङ्कको राजाकी पत्नीने बड़ी श्रद्धासे अपने वे देवदुर्लभ कुण्डल दे दिये। छल करके तक्षकने उन कुण्डलोंको मार्गमें ही चुरा लिया; किंतु इन्द्रकी सहायतासे पाताल जाकर उत्तङ्कने फिर कुण्डलोंको प्राप्त किया और समयसे पहले ही गुरुपत्नीको उन्हें अर्पित किया। जिसमें पूरा संयम और अटल गुरुभक्ति है, उसके निश्चयको भला त्रिलोकीमें कोई भी व्यर्थ कैसे कर सकता है?

उनके आगे रखनेके लिये दौड़ पड़े । परंतु जूतेके पास दोनों साथ ही पहुँचे । इसलिये अब उनमें यह झगड़ा उठ खड़ा हुआ कि गुरुसेवाका यह पुण्यकर्म कौन करे । अन्तमें दोनोंने यह निश्चय किया कि दोनों आदमी एक-एक जूता उठाकर गुरुके चरणोंके आगे रक्खें । ऐसा ही किया गया ।

इस बातकी खबर खलीफाके कानोंमें पहुँची और उन्होंने शिक्षकको बुला भेजा । मामूँने शिक्षकसे पूछा कि 'आज दुनियामें सबसे अधिक प्रतिष्ठित और पूज्य कौन है ?' शिक्षकने कहा—'मुसल्मानोंके स्वामी मामूँकी अपेक्षा अधिक प्रतिष्ठित और कौन हो सकता है ?' मामूँने कहा—'नहीं, वह पुरुष है जिसका जूता सीधा करनेके लिये मुसल्मानोंके स्वामीके पुत्र परस्पर झगड़ते हैं !'

शिक्षकने उत्तर दिया कि 'मुझे अपने शाहजादोंको ऐसा करनेसे रोकनेकी इच्छा हुई; पर पीछे विचार हुआ कि मैं इनकी श्रद्धाको क्यों रोकूँ ?' मामूँने कहा—'आपने इनको रोका होता तो मैं बहुत ही नाराज होता । इस कामसे इनकी इज्जत कुछ कम नहीं हुई, बल्कि इससे इनकी कुलीनता और शिष्टाचारका परिचय मिलता है । बादशाह, पिता और गुरुकी सेवा करनेसे प्रतिष्ठा बढ़ती है, घटती नहीं ।'

ऐसा कहकर उन्होंने गुरुभक्तिके बदले लड़कोंको हजार-हजार दरहम पुरस्कार दिया और अध्यापकका कर्तव्य ठीक-ठीक पालन करनेके कारण शिक्षकको भी उतना ही इनाम दिया ।

श्रीगणेशजी

[पितृभक्तिने प्रथमपूज्य बनाया]

'यज्ञ, पूजन, हवनादिके समय पहले किस देवताकी पूजा की जाय ?' देवताओंमें ही इस प्रश्नपर मतभेद हो गया था। सभी चाहते थे कि यह सम्मान मुझे मिले। जब आपसमें कोई निपटारा न हो सका, तब सब मिलकर ब्रह्माजीके पास गये; क्योंकि सबके पिता-पितामह तो ब्रह्माजी ही हैं और सत्पुरुष बड़े-बूढ़ोंकी बात अवश्य मान लिया करते हैं। ब्रह्माजीने देवताओंकी बात सुनकर निर्णय सुना दिया—'जो पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करके सबसे पहले मेरे पास पहुँचे, वही सर्वश्रेष्ठ है और उसीकी सबसे पहले पूजा हुआ करेगी।'

देवताओंमें दौड़ा-दौड़ मच गयी । कोई हाथीपर सवार हुआ, कोई घोड़ेपर तो कोई रथपर । पशु तथा पक्षियोंपर भी देवता बैठ गये । जिसका जो वाहन है, वह अपने उस वाहन-को पूरे वेगसे दौड़ाने लगा । सभी इस प्रयत्नमें लग गये कि पहले मैं ही पृथ्वीकी प्रदक्षिणा कर लूँ । अकेले गणेशजी खड़े सोचते रहे । एक तो उनका भारी-भरकम शरीर और बड़ी-सी तोंद, उसपर उनका वाहन ठहरा चूहा । वे सोच रहे थे—'मेरा चूहेपर बैठकर दौड़ना व्यर्थ है । चूहा इतने पशु-पक्षियोंसे दौड़में आगे नहीं जा सकता ।' लेकिन सोचते-सोचते उन्हें एक बात सूझ गयी । वे चूहेपर कूदकर बैठ गये और सीधे कैलाशकी ओर भागे । किसीको गणेशजीकी ओर देखनेका अवकाश नहीं था ।

कैलाश पहुँचकर गणेशजीने सीधे माता पार्वतीका हाथ पकड़ा और कहा—'माँ ! माँ ! तू झटपट चलकर पिताजीके पास जरा देरको बैठ तो जा !'

पार्वतीजीने अपने पुत्रकी अकुलाहट देखकर हँसते हुए पूछा–'तू इतनी शीघ्रतामें क्यों है ? क्या बात है ?'

गणेशजी बोले—'तू चलकर पहले बैठ जा । पिताजी तो ध्यान करने बैठे हैं । वे तो उठेंगे नहीं, तू जल्दी चल ।'

माता पार्वती क्या करतीं, पुत्रका आग्रह रखनेके लिये वे भगवान् शङ्करके समीप बायीं ओर जाकर बैठ गयीं ।

गणेशजीने भूमिमें लेटकर माता-पिताको प्रणाम किया और

फिर अपने चूहेपर बैठकर दोनोंकी सात प्रदक्षिणा की। फिर माता-पिताको प्रणाम करके वे ब्रह्मलोककी ओर दौड़ चले।

जब देवता ब्रह्माजीके पास पहुँचे, तब उन्होंने देखा कि ब्रह्माजीके पास गणेशजी पहलेसे बैठे हैं। देवताओंने समझा कि ये अपनी विजय होते न देखकर यहाँसे कहीं गये ही नहीं; किंतु ब्रह्माजीने जय बताया कि सबसे पहले गणेशजीकी पूजा होगी, तब सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। एक देवताने कहा—'आपने तो कहा था कि जो पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करके पहले आयेगा, वही प्रथम पूज्य होगा।'

ब्रह्माजी बोले—'बात तो ठीक है; पर गणेशजी तो पृथ्वीकी तथा समस्त ब्रह्माण्डोंकी एक-दो नहीं पूरी सात प्रदक्षिणा करके सबसे पहले आ गये हैं।'

देवता एक दूसरेका मुख देखने लगे—'यह कैसी बात? यह कैसे सम्भव है?'

ब्रह्माजीने उन्हें समझाया—'माता साक्षात् पृथ्वीका स्वरूप है और पिता तो भगवान् नारायणकी मूर्ति ही हैं। भगवान् नारायणके शरीरमें ही समस्त ब्रह्माण्ड रहते हैं।'

देवता अब क्या कहते? उन्होंने गणेशजीको प्रणाम किया। पिता-मातामें श्रद्धा रखनेके कारण गणेशजी प्रथम-पूज्य हो गये।

चार पितृभक्त बालक

द्वारकापुरीमें शिवशर्मा नामके एक तपस्वी, वेदोंके ज्ञाता ब्राह्मण रहते थे। उनके पाँच पुत्र थे—यज्ञशर्मा, वेदशर्मा, धर्मशर्मा, विष्णुशर्मा तथा सोमशर्मा। ये सभी पिताके परम भक्त थे। शिवशर्माने एक बार अपने पुत्रोंकी पितृभक्तिकी परीक्षा लेनेका विचार किया। वे योगसिद्ध थे, अतः मायाके द्वारा उन्होंने एक घटना दिखायी। उनके पुत्रोंने देखा कि उनकी माता ज्वरसे पीड़ित होकर मर गयीं। यह देखकर वे पुत्र अपने पिताके पास गये और पूछने लगे कि 'माताकी मृत्युपर हमें क्या करना चाहिये।' शिवशर्माने अपने बड़े पुत्र यज्ञशर्मासे कहा—'किसी तेज हथियारसे अपनी माताके शरीरको टुकड़े-टुकड़े करके इधर-उधर फेंक दो।' पुत्रने पिताकी आज्ञाका पालन किया।

शिवशर्माने अपने दूसरे पुत्र वेदशर्मासे कहा—'बेटा! मैं स्त्रीके बिना नहीं रह सकता। सौभाग्य-सम्पत्तिसे युक्त जिस स्त्रीको मैंने देखा है, तुम उसे मेरे लिये यहाँ ले आओ।'

पिताकी आज्ञा मानकर वेदशर्मा उस स्त्रीके पास गये और उन्होंने उससे अपने पिताके पास चलनेकी प्रार्थना की। मायासे प्रकट हुई उस स्त्रीने कहा—'तुम्हारे पिता बूढ़े हो

गये हैं, उनको खाँसी आती है, उनके मुखसे कफ निकलता है, और भी बहुत-सी बीमारियाँ उन्हें हैं, मैं उन्हें पति नहीं बनाना चाहती। मैं तो तुम्हें चाहती हूँ। तुम सुन्दर हो, सुलक्षण हो, तरुण हो। तुम उस बूढ़ेको लेकर क्या करोगे। तुम मुझे स्वीकार करो। जिस-किसी वस्तुकी तुम्हें इच्छा होगी, मैं तुम्हें वह ला दिया करूँगी।'

वेदशर्मा बोले—'देवि! तुम मेरी माता हो। ऐसे पापपूर्ण वचन तुम्हें नहीं कहने चाहिये। मैं निरपराध हूँ और पिताका भक्त हूँ। तुम जो कुछ माँगो, मैं वह तुम्हें दूँगा। स्वर्गका राज्य भी चाहो तो वह भी दूँगा, पर तुम मेरी प्रार्थनासे मेरे पिताके पास चलो और उन्हें प्रसन्न करो।'

उस स्त्रीने देवताओंके दर्शन करने चाहे। अपने तपोबलसे वेदशर्माने देवताओंके दर्शन करा दिये। अब उस स्त्रीने फिर कहा—'देवताओंसे मुझे कुछ काम नहीं है। यदि तुम मुझे अपने पिताके लिये चाहते हो तो अपना मस्तक मुझे दो।'

वेदशर्माने प्रसन्नतासे कहा—'आज मेरा जन्म लेना सफल हो गया। पिताके लिये प्राणत्याग करनेवाला पुत्र धन्य है!' उन्होंने तीखी तलवारसे अपने हाथसे अपना मस्तक उस स्त्रीके सामने काट दिया। रक्तमें सने उस सिरको लेकर वह स्त्री शिवशर्माके पास आयी। अपने भाईके कटे मस्तकको

देखकर शिवशर्माके चारों पुत्र कहने लगे—'हमलोगोंमें वेदशर्मा ही भाग्यवान् थे। पिताके लिये इन्होंने अपने प्राण दे दिये।'

शिवशर्माने अपने तीसरे पुत्र धर्मशर्मासे कहा—'बेटा! अपने भाईके मस्तकको ले जाओ। ऐसा उपाय करो, जिसमें यह जी जाय।'

धर्मशर्माने भाईका मस्तक ले लिया और ले जाकर उनके शरीरपर जमाया। उन्होंने पिताकी भक्ति, तपस्या तथा सत्यके बलसे धर्मराजका आवाहन किया। उनके आवाहन करनेपर धर्मराज वहाँ प्रकट हो गये और उन्होंने वेदशर्माको जीवित कर दिया। धर्मराजके वरदान देनेकी इच्छा प्रकट करनेपर धर्मशर्माने उनसे पिताके चरणोंमें अविचल भक्ति, धर्ममें प्रेम तथा मरनेपर मोक्षप्राप्तिका वरदान माँग लिया। वरदान देकर धर्मराज अदृश्य हो गये। भाईको लेकर धर्मशर्मा पिताके पास चले गये।

शिवशर्माने अपने चौथे पुत्र विष्णुशर्मासे कहा—'बेटा! मैं अपनी इस प्रियतमाके साथ समस्त रोगोंको दूर करनेवाला अमृत पीना चाहता हूँ। तुम स्वर्ग जाकर अमृत ले आओ।'

पिताकी आज्ञा मानकर विष्णुशर्मा अपने तपोबलसे आकाशमें होकर इन्द्रलोककी ओर चले। उन्हें आते देखकर देवराज इन्द्रने मेनका अप्सराको उनके काममें विघ्न डालनेके

लिये भेजा। वह स्वर्गकी परम सुन्दरी अप्सरा सज-धजक नन्दनवनमें मार्गके पास झूलेपर बैठकर झूलने तथा बड़े मधु स्वरमें गाने लगी। विष्णुशर्मा उसके पाससे निकले, परं उन्होंने उसकी ओर देखा ही नहीं। उन्हें आगे जाते देख उस अप्सराने कहा—'महामति विप्रकुमार! इतनी शीघ्रता कहाँ जा रहे हो? मैं तुम्हारी शरण आयी हूँ। मेरी रक्षा करना तुम्हारा धर्म है।'

विष्णुशर्मा बोले—'सुन्दरी! तुम्हारे मनमें क्या है, सो मैं जानता हूँ। तुमने महर्षि विश्वामित्रके तपका नाश कर दिया, पर मैं अपने पिताका भक्त हूँ, मुझपर तुम्हारा जादू नहीं चल सकता। मुझे पिताका काम पूरा करना है, तुम किसी औरको ढूँढ़ लो।'

इन्द्रलोकमें पहुँचकर विष्णुशर्माने इन्द्रसे अमृत माँगा। अमृत देनेके बदले देवराज अनेक प्रकारके विघ्न उपस्थित करने लगे। उन सब विघ्नोंको अपने तप तथा तेजसे ही नष्ट करके विष्णुशर्मा सोचने लगे—'यह इन्द्र मेरी बात नहीं मानता तो मैं इसे स्वर्गसे नीचे गिरा दूँगा और किसी दूसरेको यहाँ इन्द्र बना दूँगा।'

इसी समय अमृतका घड़ा लेकर वहाँ देवराज आये। उन्होंने ब्राह्मणकुमारके चरणोंमें प्रणाम करके अपने अपराधोंके लिये क्षमा-याचना की। वहाँसे अमृत लेकर विष्णुशर्मा अपने

लिये भेजा। वह स्वर्गकी परम सुन्दरी अप्सरा सज-धजकर नन्दनवनमें मार्गके पास झूलेपर बैठकर झूलने तथा बड़े मधुर स्वरमें गाने लगी। विष्णुशर्मा उसके पाससे निकले, परंतु उन्होंने उसकी ओर देखा ही नहीं। उन्हें आगे जाते देख उस अप्सराने कहा—'महामति विप्रकुमार! इतनी शीघ्रतासे कहाँ जा रहे हो? मैं तुम्हारी शरण आयी हूँ। मेरी रक्षा करना तुम्हारा धर्म है।'

विष्णुशर्मा बोले—'सुन्दरी! तुम्हारे मनमें क्या है, सो मैं जानता हूँ। तुमने महर्षि विश्वामित्रके तपका नाश कर दिया, पर मैं अपने पिताका भक्त हूँ, मुझपर तुम्हारा जादू नहीं चल सकता। मुझे पिताका काम पूरा करना है, तुम किसी औरको ढूँढ़ लो।'

इन्द्रलोकमें पहुँचकर विष्णुशर्माने इन्द्रसे अमृत माँगा। अमृत देनेके बदले देवराज अनेक प्रकारके विघ्न उपस्थित करने लगे। उन सब विघ्नोंको अपने तप तथा तेजसे ही नष्ट करके विष्णुशर्मा सोचने लगे—'यह इन्द्र मेरी बात नहीं मानता तो मैं इसे स्वर्गसे नीचे गिरा दूँगा और किसी दूसरेको यहाँ इन्द्र बना दूँगा।'

इसी समय अमृतका घड़ा लेकर वहाँ देवराज आये। उन्होंने ब्राह्मणकुमारके चरणोंमें प्रणाम करके अपने अपराधोंके लिये क्षमा-याचना की। वहाँसे अमृत लेकर विष्णुशर्मा अपने

लिये भेजा। वह स्वर्गकी परम सुन्दरी अप्सरा सज-धजकर नन्दनवनमें मार्गके पास झूलेपर बैठकर झूलने तथा बड़े मधुर स्वरमें गाने लगी। विष्णुशर्मा उसके पाससे निकले, परंतु उन्होंने उसकी ओर देखा ही नहीं। उन्हें आगे जाते देख उस अप्सराने कहा—'महामति विप्रकुमार! इतनी शीघ्रतासे कहाँ जा रहे हो? मैं तुम्हारी शरण आयी हूँ। मेरी रक्षा करना तुम्हारा धर्म है।'

विष्णुशर्मा बोले—'सुन्दरी! तुम्हारे मनमें क्या है, सो मैं जानता हूँ। तुमने महर्षि विश्वामित्रके तपका नाश कर दिया, पर मैं अपने पिताका भक्त हूँ, मुझपर तुम्हारा जादू नहीं चल सकता। मुझे पिताका काम पूरा करना है, तुम किसी औरको ढूँढ़ लो।'

इन्द्रलोकमें पहुँचकर विष्णुशर्माने इन्द्रसे अमृत माँगा। अमृत देनेके बदले देवराज अनेक प्रकारके विघ्न उपस्थित करने लगे। उन सब विघ्नोंको अपने तप तथा तेजसे ही नष्ट करके विष्णुशर्मा सोचने लगे—'यह इन्द्र मेरी बात नहीं मानता तो मैं इसे स्वर्गसे नीचे गिरा दूँगा और किसी दूसरेको यहाँ इन्द्र बना दूँगा।'

इसी समय अमृतका घड़ा लेकर वहाँ देवराज आये। उन्होंने ब्राह्मणकुमारके चरणोंमें प्रणाम करके अपने अपराधोंके लिये क्षमा-याचना की। वहाँसे अमृत लेकर विष्णुशर्मा अपने

पिताके पास आ गये। शिवशर्माको अमृतकी आवश्यकता तो थी नहीं, वे तो अपने पुत्रोंकी परीक्षा ले रहे थे। अब उन्होंने अपने पुत्रोंको बुलाकर उनसे कहा—'मैं तुमलोगोंसे प्रसन्न हूँ। तुम्हारे मनमें जो आये माँग लो।'

इच्छानुसार उन्हें फल, पुष्प, दूध आदि लाकर देते और सर्वदा उन्हें प्रसन्न करनेके प्रयत्नमें लगे रहते। इतनेपर भी पिता शिवशर्मा उन्हें बड़े कठोर तथा दुःखदायी वचन कहते। बार-बार झिड़कते, तिरस्कार करते और डंडोंसे पीटते

भी थे। यह सब करनेपर भी सोमशर्माने कभी पिताके ऊपर

क्रोध नहीं किया। वे मन, वाणी तथा क्रियासे सर्वदा पिताकी पूजा ही करते थे।

दीर्घकालतक परीक्षा लेनेके बाद सोमशर्मापर उनके पिता प्रसन्न हुए। अब उन्होंने मायासे घड़ेमें रक्खे अमृतका हरण कर लिया और बोले—'बेटा! मैंने तुम्हें रोगनाशक अमृत दिया था, उसे लाकर मुझे दो। मैं उसे पीना चाहता हूँ।'

सोमशर्मा अमृत-कलशके पास गये तो उसमें एक बूँद अमृत नहीं था। यह देखकर मन-ही-मन उन्होंने कहा—'यदि मुझमें सत्य तथा गुरु-शुश्रूषा है, यदि मैंने निश्छलभावसे तप किया है, यदि इन्द्रिय-संयम, शौच आदि धर्मोंको मैंने कभी छोड़ा नहीं है तो यह घड़ा अमृतसे भर जाय।' महाभाग सोमशर्माने यह कहकर जैसे ही उस कलशकी ओर देखा, वह ऊपरतक अमृतसे भर गया। बड़ी प्रसन्नतासे उसे लेकर वे अपने पिताके पास गये।

अपने धर्मात्मा पुत्रपर प्रसन्न होकर अब शिवशर्माने पत्नीके साथ उस कृत्रिम कोढ़ी रूपको छोड़ दिया और पहलेके समान स्वस्थ रूप धारण कर लिया। सोमशर्माने माता-पिताके चरणोंमें प्रणाम किया। अपने तप तथा योगके प्रभावसे पत्नी तथा पुत्रके साथ शिवशर्मा भगवान् विष्णुके परम धामको प्राप्त हुए।

न तीर्थ करने गये और न उन्होंने गुरुकी उपासना की; फिर भी वे समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता हैं। अपने माता-पिताकी वे सच्चे मनसे सेवा करते हैं और इस सेवाके प्रतापसे बालक होनेपर भी उन्हें जैसा ज्ञान प्राप्त हुआ है, वैसा तुम्हें अबतक नहीं मिला।'

सारसकी बात सुनकर पिप्पलजी शीघ्रतापूर्वक कुरुक्षेत्रमें स्थित विप्रवर कुण्डलके आश्रमकी ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि बालक सुकर्मा अपने माता-पिताकी सेवामें लगे हैं। कुण्डलकुमार सुकर्माने पिप्पलको अपने यहाँ आये देखकर खड़ा होकर उनका स्वागत किया, उनको बैठनेके लिये आसन दिया तथा उनके चरण धोये। उन्होंने विधिपूर्वक अतिथि-सत्कार किया। इसके पश्चात् बिना पूछे ही सुकर्माने बता दिया कि सारसके भेजनेसे पिप्पल उनके पास आये हैं। उन्होंने ही पिप्पलको बताया कि तपस्या तथा सिद्धिसे पिप्पलको जो गर्व हो गया था, उसे दूर करनेके लिये ब्रह्माजी ही सारस बनकर उनके पास गये थे। पिप्पलको अब भी अपनी सिद्धिका कुछ गर्व था। उनको विश्वास दिलानेके लिये सुकर्माने देवताओंका स्मरण किया। सुकर्माके स्मरण करते ही इन्द्रादि देवता वहाँ प्रकट हो गये। देवताओंका दर्शन कभी निष्फल नहीं होता, अतः सुकर्माने देवताओंके कहनेपर उनसे वरदान माँगा—

पितृभक्त बालक सुकर्मा

'माता-पिताके चरणोंमें मेरी सुस्थिर भक्ति हो और मेरे माता-पिता भगवान् विष्णुके धामको पधारें।' देवता वरदान देकर अपने लोक चले गये। अब पिप्पलको सुकर्माकी शक्तिका

प्रसन्न होते हैं। जो पुत्र प्रतिदिन माता-पिताके चरण धोता है, उसे नित्य गङ्गा-स्नानका फल मिलता है। जिस पुत्रने ताम्बूल, वस्त्र, खान-पानकी सामग्री आदिसे माता-पिताका पूजन किया है, वह सर्वज्ञ हो जाता है। द्विजश्रेष्ठ! माता-पिताको स्नान कराते समय उनके शरीरसे जो जलके छींटे पुत्रपर पड़ते हैं, उससे उसको सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नानका फल प्राप्त होता है। यदि पिता पतित, वृद्ध, रोगी, भूखसे व्याकुल, असमर्थ तथा कोढ़ी हो गये हों तथा माताकी भी यही अवस्था हो तो भी जो पुत्र उनकी सेवा करता है, उसपर भगवान् नारायण प्रसन्न होते हैं। वह योगियोंके लिये भी दुर्लभ भगवान्के नित्यधामको प्राप्त होता है। जिसने माता-पिताका आदर नहीं किया, उसके यज्ञ, तप, दान, पूजन सभी शुभ कर्म निष्फल और व्यर्थ हैं। पुत्रके लिये तो बस माता-पिता ही धर्म, तीर्थ, मोक्ष, यज्ञ, दान तथा जन्मका सर्वोत्तम फल—सब कुछ हैं।

'जो अङ्गहीन, दीन, वृद्ध, दुखी तथा महारोगसे पीड़ित माता-पिताको त्याग देता है, वह दुरात्मा पुत्र कीड़ोंसे भरे दारुण नरकमें पड़ता है। जो मूर्ख पुत्र बूढ़े माता-पिताके बुलानेपर भी वहाँ नहीं जाता, वह विष्ठाभोजी ग्रामशूकर होता है तथा फिर हजार जन्मोंतक उसे बराबर कुत्तेका जन्म मिलता है। घरमें बूढ़े माता-पिताके रहनेपर उन्हें भोजन कराये

बिना जो स्वयं पहले भोजन करता है, वह एक हजार जन्मोंतक विष्ठा खानेवाला घृणित गुबरैला होता रहता है। माता-पिताको कटु वचन कहनेवाला बाघ होता है। पीछे भालू होता है। माता-पिताको जो दुरात्मा प्रणाम नहीं करता, वह एक हजार युगोंतक कुम्भीपाक नरकमें निवास करता है।'

अन्तमें सुकर्माने कहा—'पुत्रके लिये पिता-मातासे बढ़कर दूसरा तीर्थ नहीं है। माता-पिता इस लोक तथा परलोकमें भी नारायणके समान हैं। मैं प्रतिदिन माता-पिताकी सेवामें लगा रहता हूँ, इसीसे तीनों लोक मेरे वशमें हो गये हैं। मेरी सर्वज्ञताका कारण माता-पिताकी सेवा ही है और यही मेरे ज्ञानका कारण है। जो माता-पिताकी सेवा नहीं करता, उसे वेदोंके साङ्गोपाङ्ग अध्ययनसे क्या लाभ होता है। यज्ञ, तप, दान तथा पूजनसे भी उसे क्या लाभ होगा। जो माता-पिताका आदर नहीं करता, उसके सभी शुभ कर्म व्यर्थ हैं। माता-पिता ही पुत्रके लिये यज्ञ, दान, तप, तीर्थ तथा मोक्ष भी हैं।'

सुकर्माने और भी अनेक उपाख्यान पिप्पलजीको सुनाये। उनके उपदेशोंको सुनकर पिप्पलका गर्व दूर हो गया। अपने पिछले गर्वके कारण वे लज्जित हुए। सुकर्माकी आज्ञा लेकर तथा उन्हें प्रणाम करके वे स्वर्ग चले गये।

पितृभक्त बालक पिप्पलाद

वृत्रासुरने स्वर्गपर अधिकार कर लिया था। इन्द्र देवताओंके साथ स्वर्ग छोड़कर भाग गये थे। देवताओंके कोई भी अस्त्र-शस्त्र वृत्रासुरको मार नहीं सकते थे। अन्तमें इन्द्रने तपस्या तथा प्रार्थना करके भगवान्‌को प्रसन्न किया। भगवान्‌ने बताया कि महर्षि दधीचिकी हड्डियोंसे विश्वकर्मा वज्र बनावें तो उससे वृत्रासुर मर सकता है। महर्षि दधीचि बड़े भारी तपस्वी थे। उनकी तपस्याके प्रभावसे उनकी आज्ञा सभी जीव-जन्तु तथा वृक्षतक मानते थे। उन तेजस्वी ऋषिको देवता मार तो सकते नहीं थे, उन्होंने जाकर उनसे उनकी हड्डियाँ माँगीं।

महर्षि दधीचिने कहा—'यह शरीर तो एक दिन नष्ट ही होगा। मरना तो सबको पड़ेगा ही। किसीका उपकार

करके मृत्यु हो, शरीर किसीकी भलाईमें लग जाय, इससे अच्छी भला और क्या बात होगी। मैं योगसे अपना शरीर छोड़ देता हूँ। आपलोग हड्डियाँ ले लें।'

महर्षि दधीचिने योगसे शरीर छोड़ दिया। वे मरकर मुक्त हो गये। उनके शरीरकी हड्डियोंसे विश्वकर्माने वज्र बनाया। उस वज्रसे इन्द्रने वृत्रासुरको मारा। देवताओंको स्वर्ग मिल गया।

महर्षि दधीचिकी स्त्रीका नाम प्रातिथेयी था। इनके एक पुत्र भी थे। महर्षि दधीचिके पुत्र भी बड़े तपस्वी थे। वे केवल पीपलके फल (गोदा) खाकर रहते थे, इससे उनका नाम पिप्पलाद पड़ गया था। पिप्पलादने जब सुना कि देवताओंने उनके पितासे उनकी हड्डियाँ माँगीं और देवताओंको हड्डियाँ देनेके कारण उनके पिता मरे तो पिप्पलाद-को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने देवताओंसे बदला लेनेका विचार किया।

पिप्पलाद देवताओंसे बदला लेनेके लिये भगवान् शङ्करजीकी उपासना और तपस्या करने लगे। उन्होंने बहुत दिनोंतक तपस्या की और तब शङ्करजी उनपर प्रसन्न होकर प्रकट हुए। शङ्करजीने उनसे वरदान माँगनेको कहा। पिप्पलादने कहा—'आप मुझे ऐसी शक्ति दीजिये कि मैं अपने पिताके मारनेवालोंको नष्ट कर दूँ।'

शङ्करजीने एक बड़ी भयानक राक्षसी उत्पन्न करके पिप्पलादको दे दी। राक्षसीने पिप्पलादसे पूछा—'आप आज्ञा दें, मैं क्या करूँ ?'

पिप्पलादने कहा—'तुम सब देवताओंको खा लो !'

वह राक्षसी अपना बड़ा भारी मुख फाड़कर पिप्पलादको ही खाने दौड़ी। डरकर पिप्पलादने पूछा—'तू मुझे क्यों खाने आती है?'

राक्षसी बोली—'सब जीवोंके अङ्गोंमें उन अङ्गोंके देवता रहते हैं। जैसे नेत्रोंमें सूर्य, हाथोंमें इन्द्र, जीभमें वरुण। इसी प्रकार दूसरे देवता भी दूसरे अङ्गोंमें रहते हैं। स्वर्गके देवता तो दूर हैं, पहले जो लोग मेरे पास हैं, उन्हें तो खा लूँ। मेरे सबसे पास तो तुम्हीं हो।'

पिप्पलाद बहुत डरे और भगवान् शङ्करजीकी शरणमें गये। शङ्करजीने पिप्पलादसे कहा—'बेटा! क्रोध बहुत बुरा होता है। क्रोधके वशमें होनेसे बहुत पाप होते हैं। देखो, मैं यदि इस राक्षसीको तुम्हें खानेसे रोक भी दूँ तो यह दूसरे सब जीवोंको खा जायगी। तुम्हें ही सारे संसारको मारनेका पाप लगेगा। मान लो कि यह स्वर्गके देवताओंको ही मार डाले, तब भी सारे संसारका नाश हो जायगा। आँखोंके देवता सूर्य हैं, सूर्य न रहेंगे तो सब लोग अंधे हो जायँगे। हाथके देवता इन्द्र हैं, इन्द्र न रहेंगे तो कोई हाथ हिला ही नहीं सकेगा। इसी प्रकार जिस अङ्गके जो देवता हैं, उस देवताकी शक्तिसे ही जीवोंके वे अङ्ग काम करते हैं। देवता न रहेंगे तो तुम्हारा भी कोई अङ्ग काम नहीं करेगा। इसलिये तुम देवताओंपर क्रोध मत करो। देवताओं-

ने तुम्हारे पितासे उनकी हड्डियाँ भिक्षामें माँगी थीं। तुम्हारे पिता इतने बड़े दानी और उपकारी थे कि उन्होंने अपनी हड्डियाँ भी दे दीं। तुम इतने बड़े महात्माके पुत्र हो। अपने पिताके सामने भिखारी बननेवालोंपर तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिये।'

भगवान् शङ्करका उपदेश सुनकर पिप्पलादका क्रोध दूर हो गया। उन्होंने कहा—'भगवन्! आपकी आज्ञा मानकर मैं देवताओंको क्षमा करता हूँ।' राक्षसी भी चली गयी।

पिप्पलादकी क्षमासे शङ्करजीने प्रसन्न होकर उन्हें वरदान दिया कि वे जहाँ तपस्या करते थे, वह स्थान पिप्पल-तीर्थ हो जायगा और उस तीर्थमें स्नान करनेवाले सब पापोंसे छूटकर भगवान्के धाम जायँगे।

पिप्पलादकी इच्छा अपने पिता महर्षि दधीचिका दर्शन करनेकी थी। देवताओंकी प्रार्थनासे ऋषियोंके लोकसे महर्षि दधीचि और पिप्पलादकी माता प्रातिथेयीजी विमानमें बैठकर वहाँ आये और उन्होंने पिप्पलादको आशीर्वाद दिया।

बालक पिप्पलाद आगे बड़े भारी विद्वान् और ब्रह्मर्षि हुए। इनका वर्णन प्रश्नोपनिषद् और शिवपुराणमें भी आता है।

मातृपितृभक्त श्रवणकुमार

श्रवणकुमार जातिके वैश्य थे। इनके माता-पिता दोनों अंधे हो गये थे। बड़ी सावधानी और श्रद्धासे ये उनकी सेवा करते थे और उनकी प्रत्येक इच्छा पूरी करनेका प्रयत्न करते थे। इनके माता-पिताकी इच्छा तीर्थ-यात्रा करनेकी हुई। इन्होंने एक काँवर बनायी और उसमें दोनोंको बैठाकर कंधेपर उठाये हुए ये यात्रा करने लगे। ब्राह्मणके लिये तो भिक्षा माँगकर जीविका-निर्वाह कर लेनेकी विधि है; किंतु दूसरे वर्णके लोग यदि दरिद्र हों और तीर्थ-यात्रा कर रहे हों तो बिना माँगे जो कुछ अपने-आप कोई दे दे, उसीसे जीवन-निर्वाह करना चाहिये; लेकिन श्रवणकुमार तो वनसे

जटाएँ बिखर गयी हैं, पात्रका जल गिर गया है और उसका शरीर धूलि तथा रक्तसे लथपथ हो रहा है। उसने महाराज-को देखकर कहा—'राजन्! मैंने तो आपका कभी कोई अपराध किया नहीं था, आपने मुझे क्यों मारा? मेरे माता-पिता दुर्बल तथा अंधे हैं। उनके लिये मैं यहाँ जल लेने आया था, वे मेरी प्रतीक्षा करते होंगे। उन्हें क्या पता कि मैं यहाँ इस प्रकार पड़ा हूँ। पता लग जाय तो वे चल नहीं सकते। मुझे अपनी मृत्युका कोई दुःख नहीं; किंतु मुझे अपने माता-पिताके लिये बहुत दुःख है। आप उन्हें जाकर यह समाचार सुना दें और जल पिलाकर उनकी प्यास शान्त करें।'

महाराज दशरथ शोकसे व्याकुल हो रहे थे। श्रवणने उन्हें अपने माता-पिताका पता तथा वहाँ पहुँचनेका मार्ग बताकर आश्वासन दिया—'आपको ब्रह्महत्या नहीं लगेगी। मैं ब्राह्मण नहीं, वैश्य हूँ। पर मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है। आप यह अपना बाण मेरी छातीसे निकाल दें।'

बाणके निकाल लेनेपर व्यथासे तड़पकर एवं काँपकर श्रवणने शरीर छोड़ दिया। अब महाराज दशरथ पश्चात्ताप करते हुए जलके पात्रको सरयूजीके जलसे भरकर श्रवणके माता-पिताके पास पहुँचे। वहाँ पहुँचकर दुःखसे भरे हुए कण्ठसे किसी प्रकार उन्होंने अपने अपराधका वर्णन किया।

वे दोनों अंधे वृद्ध दम्पति पुत्रके मरनेकी बात सुनकर अत्यन्त व्याकुल हो गये। उन्होंने रोते-रोते महाराजसे कहा कि 'हमें अपने पुत्रके मृत शरीरके पास पहुँचा दिया जाय।' महाराज दशरथने दोनोंको कंधेपर उठाकर वहाँ पहुँचाया। उसी समय महाराजने देखा कि मुनिकुमार श्रवण माता-पिताकी सेवाके फलसे दिव्य रूप धारण करके विमानपर बैठकर स्वर्गको जा रहे हैं। उन्होंने आश्वासन देते हुए अपने माता-पितासे कहा—'आप दोनोंकी सेवासे मैंने यह उत्तम गति प्राप्त की है। आप मेरे लिये शोक न करें। आपलोग भी शीघ्र ही मेरे पास आ जाइयेगा।'

इसके पश्चात् उन दोनोंने सूखी लकड़ियाँ एकत्र कराकर उसपर श्रवणका मृत देह रखवाया। सरयूजीमें स्नान करके अपने पुत्रको जलाञ्जलि दी और फिर उसी चितामें गिरकर शरीर छोड़ दिया। अन्तिम समय उन्होंने दुःखके वेगमें महाराजको शाप दे दिया—'जैसे पुत्रके वियोगमें हम दोनों मर रहे हैं, वैसे ही तुम्हारा शरीर भी पुत्रके वियोगमें ही छूटेगा।'

श्रवणके माता-पिता भी अपने पुत्रके पुण्यके प्रभावसे उत्तम लोकको प्राप्त हुए। इस प्रकार श्रवणने माता-पिताकी सेवा करके उस धर्मके प्रभावसे अपना तथा माता-पिताका भी उद्धार कर दिया।

कहा—'मैं अपनी कन्या आपको तभी दे सकता हूँ, जब आप यह प्रतिज्ञा करें कि आपके पीछे इस कन्याके गर्भसे उत्पन्न पुत्र ही राज्यका अधिकारी होगा।' यद्यपि महाराज शान्तनु सत्यवतीपर आसक्त हो गये थे; परंतु अपने विनयी, सुशील तथा योग्य पुत्र देवव्रतको उसके अधिकारसे वञ्चित करना उन्होंने स्वीकार नहीं किया और वे लौट आये।

महाराज शान्तनु लौट तो आये; पर उनका चित्त सत्यवतीमें ही लगा रहा। इस चिन्तासे वे दुर्बल पड़ने लगे। देवव्रतने मन्त्रियों तथा सेवकोंसे पूछकर किसी प्रकार पिताकी चिन्ताका कारण जान लिया। वे बड़े-बूढ़े क्षत्रियोंको लेकर निषादराजके यहाँ गये और उनकी कन्याको अपने पिताके लिये माँगा। निषादराजने कहा—'यह कन्या मेरी नहीं है। यह आप-जैसे ही उच्च राजकुलमें उत्पन्न हुई है। इसके पिताने मेरे यहाँ इसे पालन-पोषणके लिये रक्खा है और वे तप करने चले गये हैं। उनकी भी इच्छा यही है कि इसका विवाह आपके पितासे हो, किंतु इस सम्बन्धमें यह दोष है कि इसके पुत्रोंकी आपसे प्रतिद्वन्द्विता हो जायगी और आपसे शत्रुता करके तो देवता भी जीवित नहीं रह सकते।'

देवव्रतने कहा—'निषादराज! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि इसके गर्भसे उत्पन्न पुत्र ही हमारा राजा होगा।'

निषादराजको इतनेसे संतोष नहीं हुआ । उन्होंने कहा—'राजकुमार ! आपकी प्रतिज्ञा तो आप-जैसे उत्तम पुरुषके ही योग्य है; किंतु मुझे भय है कि आपका पुत्र सत्यवतीके पुत्रसे राज्य छीन लेगा ।'

खिला देता था। एक बार कई दिनोंतक उसे अपने भोजनके लिये कुछ नहीं मिला। वह भीख माँगने निकला, परंतु उस दिन उसे किसीने कुछ नहीं दिया। दोपहरके बाद एक सज्जन पुरुषके घरपर वह पहुँचा। उस घरके स्वामीने कहा—'मेरे पास थोड़ा-सा भात है। तुम यदि यहाँ बैठकर खा लो तो मैं तुम्हें वह दे दूँगा।'
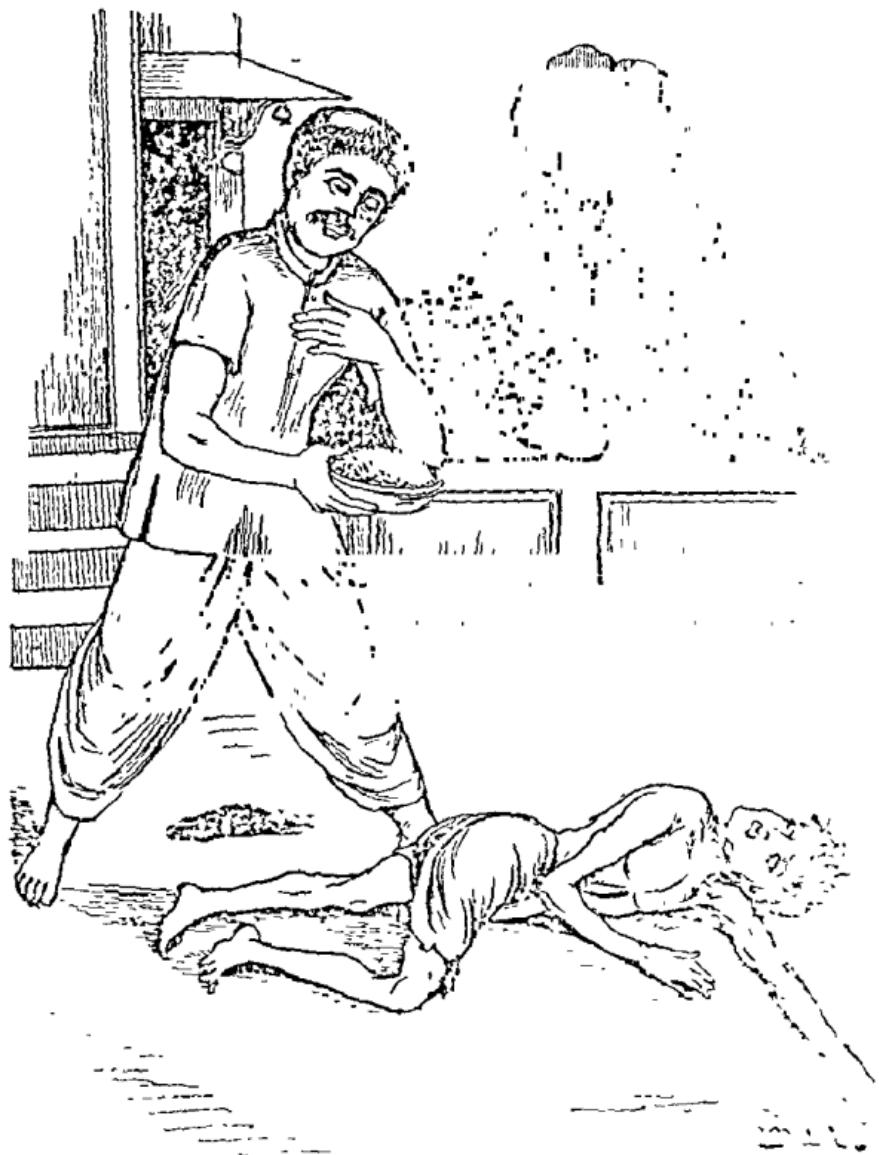
लड़का बोला—'महोदय! मेरी माता बीमार है। कल दोपहरके बाद उसे कुछ भी खानेको नहीं मिला है। वह मेरा रास्ता देखती होगी। आप दया करके मुझे दो मुट्ठी भात दे दीजिये। मैं ले जाकर अपनी माताको खिला दूँ।'

उस मनुष्यने कहा—'भात बहुत थोड़ा है। तुम्हारा पेट भरे, इतना भी नहीं है। तुम यहीं बैठकर खा लो। ले जानेके लिये मैं नहीं दूँगा।'

लड़केकी आँखोंमें आँसू भर आये। वह स्वयं कई दिनोंका भूखा था। भूखके मारे उसे चक्कर आ रहे थे, उससे चला नहीं जाता था। उसके प्राण निकलनेवाले ही थे। लेकिन उसे अपनी माताकी ही चिन्ता थी। उसने कहा—'मेरी माँ जब अच्छी थी, मुझे खिलाकर अपने बिना खाये रह जाती थी। अब वह बीमार है। मैं उसे बिना खिलाये कैसे खा सकता हूँ।'

लड़केकी मातृभक्ति देखकर वे सज्जन बहुत प्रसन्न हुए। वे उसे देनेके लिये भात लेने घरमें गये; लेकिन जब लौटकर बाहर आये तो उन्होंने देखा कि लड़का भूमिपर गिरा पड़ा

माताके लिये प्राण देनेवाला बालक

है और भूखके मारे उसके प्राण निकल गये हैं । उस बालक-ने माताको अन्न दिये बिना भोजन नहीं स्वीकार किया; जब कि भूखके कारण उसके प्राण चले ही गये। धन्य हैं ऐसे माता-पिताके भक्त बालक ।
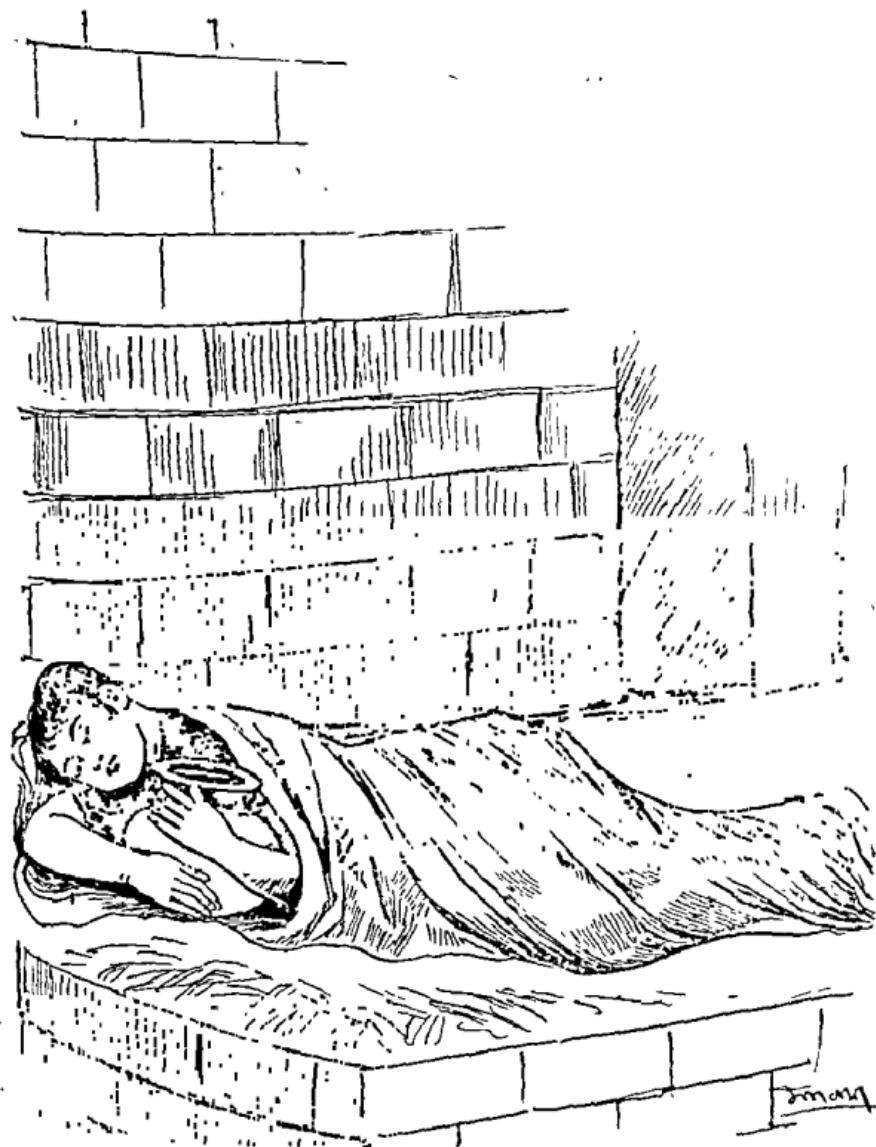
पिताका सेवक बालक फजल

हारूँ रशीद बहुत नामी बादशाह हो गया है । वह बगदादका बादशाह था । एक बार किसी कारणसे वह अपने वजीर (मन्त्री) पर नाराज हो गया । उसने वजीर और उसके लड़के फजलको जेलमें डलवा दिया ।

वजीरको ऐसी बीमारी थी कि ठंडा पानी उसे हानि पहुँचाता था । उसे सबेरे हाथ-मुँह धोनेको गरम पानी आवश्यक था । लेकिन जेलखानेमें गरम पानी कहाँसे आवे । वहाँ तो कैदियोंको ठंडा पानी ही दिया जाता है । फजल रोज शामको लोटेमें पानी भरकर लालटेनके ऊपर रख दिया करता था । रातभरमें लालटेनकी गरमीसे पानी गरम हो जाता था । उसीसे उसके पिता सबेरे हाथ-मुँह धोते थे ।

उस जेलका जेलर बड़ा निर्दय मनुष्य था । जब उसको पता लगा कि फजल अपने पिताके लिये लालटेनपर पानी गरम करता है तो उसने लालटेन वहाँसे हटवा दी । अब फजलके पिताको ठंडा पानी मिलने लगा । इससे उसकी बीमारी बढ़ने लगी । फजलसे पिताका कष्ट नहीं देखा गया । उसने एक उपाय किया । शामको वह लोटेमें पानी भरकर अपने पेटसे लोटा लगा लेता था । रातभर उसके शरीरकी गरमीसे लोटेका पानी कुछ-न-कुछ गरम हो जाता था । उसी पानीसे वह सबेरे अपने पिताका हाथ-मुँह धुलाता था । लेकिन रातभर पानी भरा लोटा पेटसे लगाये रहनेके कारण फजल सो नहीं

पिताका सेवक बालक फजल

सकता था। नींद आनेपर लोटेके पानीके गिर जानेका भय था।

जब जेलरको बालक फजलकी इस पितृभक्तिका पता लगा, तो उसका निर्दय हृदय भी दयासे पिघल गया। उसने फजलके पिताको सवेरे गरम पानी देनेकी व्यवस्था कर दी।

लड़कीको जहाजके अंदर ले लिया। खलासीके जहाजमें आ जानेके बाद सबकी नजर पानीके अंदर खिंच गयी और उन्होंने देखा कि मगर और खलासीके लड़केकी लड़ाई ज्यों-की-त्यों चल रही है। तलवारके बहुतेरे घाव लगनेके कारण मगर कुछ कमजोर हो गया था और उसके शरीरसे इतना अधिक रक्त निकल रहा था कि उसके आस-पासके समुद्रका पानी खून-जैसा दीख पड़ता था। दूसरी ओर लड़का भी बहुत ही थक गया था और डूबने-जैसा गोता खा रहा था। इतनेमें मगर कमजोर होनेके कारण जरा धीमा पड़ा और वह लड़का हिम्मत करके जोशके साथ तैरता हुआ जहाजकी ओर बढ़ा और जैसे-तैसे करके जहाजके कुछ पास आ गया। जहाजके ऊपरके लोगोंने एक रस्सी उसकी ओर फेंकी और उसकी छोरको लड़केने पकड़ लिया। इसके बाद लोग रस्सी खींचने लगे; परंतु इतनेमें ही मगर पीछे जोरसे बढ़ा और लड़केके दोनों पैरोंको वह कमरतक निगल गया।

पश्चात् उसने इतने जोरसे झटका मारा कि उसके शरीर-का निचला भाग, जो मगरके मुँहमें था, कटकर रह गया और मगर उसे मुँहमें लेकर पानीमें डुबकी मारकर समुद्रके तले जा बैठा। लड़का इससे एकदम शिथिल हो गया। फिर भी उसने पकड़ी हुई रस्सी न छोड़ी। इससे जहाजके लोगोंने उसे जहाजमें ले लिया। लड़केकी यह दुर्दशा देखकर उसके बाप-को मूर्च्छा आ गयी और वह पछाड़ खाकर जहाजमें गिर

पड़ा। थोड़ी देरके बाद सचेत होनेपर उसने देखा कि लड़का उसके पास पड़ा हुआ एक नजरसे उसकी ओर देख रहा है। बापको होशमें आते देखकर लड़का बहुत खुश हुआ और फिर उसकी गोदमें सिर करके पहलेकी तरह एकटक उसके मुँहकी ओर देखने लगा। खलासीकी आँखोंसे अश्रुधारा बह रही थी और कलेजा धड़क रहा था, इससे वह बोल नहीं सकता था।

उसकी ऐसी अवस्था देखकर लड़का हिचकती हुई आवाजसे, पर बहुत ही प्रसन्नचित्तसे अपने बापसे बोला— 'बाबा! क्यों आप इतने उदास हो रहे हैं? मैं तो अपना धन्यभाग्य समझता हूँ कि आपके प्राण जब संकटमें थे, तब मुझसे कुछ मदद हो सकी। यही नहीं, बल्कि आपकी गोदमें सिर रखकर तथा स्नेहसे उभरी हुई आपकी आँखोंकी ओर देखते हुए मरनेका महादुर्लभ अवसर मुझे प्राप्त हुआ है। मेरी मृत्युसे आप तनिक भी खेद न करें और मेरी दयामयी माताको भी शोक न करने दें। जो पूरा भाग्यशाली होता है, वही इस प्रकारकी सुखभरी मौत पाता है। बाबा! अब आखिरी प्रणाम! मुझसे जो अपराध हुआ है उसके लिये क्षमा माँगता हूँ। मेरी जीभ और आँखें खिंची जा रही हैं, इससे मैं बोल नहीं सकता। एक बार अपने स्नेहभरे हाथको मेरे सिरपर फेर दो।' इतना बोलते-बोलते उसकी जीभ थक गयी और उसकी आँखें हमेशाके लिये बंद हो गयीं। कैसा भाग्यशाली पितृभक्त लड़का था!

बढ़ा। इसी प्रकार गिरता-पड़ता वह बढ़ रहा था।

'मैया! थोड़ा भात मुझे भी!' सनातनने एक स्त्रीको भात बनाते देखकर अत्यन्त दीन और कातर वाणीमें याचना की। स्त्रीने बालककी ओर देखा। दीनता-दरिद्रता और पीड़ाकी जीवित मूर्ति देखकर स्त्री काँप गयी। वह सिहर उठी। उसका हृदय करुणार्द्र हो गया। उसने थोड़ा भात सनातनको एक पत्तेमें दे दिया। सनातन भात लेकर चल पड़ा। गिरा, उठा। फिर गिरा, फिर उठा; पर मातृ-भ्रातृ-प्रेमी बालक सनातन अपने प्राणकी चिन्ता किये बिना लाठीके सहारे भात लिये भागा जा रहा था।

कहते हैं, भूखी माँ भी अपना पुत्र त्याग देती है और भूखी साँपिन अपनी ही संततिको निगल जाती है। सनातन भी भूखसे आकुल था। उसके प्राण वशमें नहीं थे, फिर भी वह स्वयं नहीं खाकर माँ और भाईकी ओर दौड़ा जा रहा था।

'भैया!' छोटा भाई सनातनको देखते ही उसकी ओर लपका। सनातनने थोड़ा-सा भात उसके मुँहमें दे दिया। उसकी आकृतिपर जीवन आ गया। उसने और भातके लिये भाईका हाथ पकड़ा, पर सनातन माँकी ओर बढ़ गया। छोटा भाई चिल्ला उठा। 'क्या है रे!' माँने धीरेसे करवट लेकर कहा। 'थोड़ा भात है माँ!' सनातनने बताया और भात माँके सामने रख दिया।

सनातनकी सर्वथा अशक्य काया और अपने तथा पुत्रके

सारी चीजें बिक चुकी थीं। सनातनके पिताके पास कोई साधन नहीं था। उसने बाहर जानेके लिये अपनी पत्नीसे कहा। पत्नी जानती थी कि इस विवशताने इन्हें जीवनका मोह छुड़ा दिया है। उसने बार-बार मना किया; किंतु एक दिन सनातनके पिता रात्रिमें चुपके-से चल दिये और कहाँ गये, कैसे बताया जाय, जब वे पुनः कभी वापस नहीं आये।

ग्यारह वर्षकी आयु कोई अधिक नहीं होती। सनातन तो रोगी और जर्जर-सा हो गया था। अन्नके बिना उसकी कायामें अस्थि-पञ्जरके अतिरिक्त कुछ नहीं रह गया था। उसकी माँ तो चारपाईसे सट गयी थी, पर बालक बुद्धिमान् था और था मातृभक्त! माता और भाईकी रक्षाके लिये भीख माँगनेको वह स्वयं निकल पड़ा। प्रतिदिन वह तीन-चार मील चलता और हरी घास, वृक्षमूल या थोड़ा बहुत अन्न आदि जो कुछ मिलता सनातन स्वयं न खाकर अपनी जन्मदायिनी जननी और छोटे भाईके लिये ले आता। उन लोगोंको खिलाकर वह बहुत थोड़ा अपने मुँहमें डालता।

शरीर कितना सहता। सनातन मूर्च्छित हो गया। चेतना हुई, पर 'माँ और अबोध भाई!' सनातन उठता और गिर पड़ता। माँ और भाईको अन्न दिये तीन दिन बीत चुके थे। सनातनने पासमें पड़ी पिताकी लाठी उठा ली। उसीके सहारे वह अन्नके लिये चल पड़ा। कुछ दूर जानेपर फिर गिर पड़ा, मूर्च्छित हो गया। चेतना आयी, तो आगे

जीवनकी रक्षाके लिये साहस और प्रयत्न देखकर माताकी गड्ढेमें धँसी आँखें गीली हो गयीं। 'भगवान् तेरा कल्याण करें बेटा!' माँने हिचकते हुए गद्गद कण्ठसे कहा—'तेरे-जैसे सपूत बड़े भाग्यसे मिलते हैं।'

माँ-बापके लिये अपना दाँत बेचनेवाली लड़की

एक साल अमेरिकाके एक प्रान्तमें भारी अकाल पड़ा, उसमें बहुत-से आदमी मरे। उनमें बूढ़े दो स्त्री-पुरुष मरनेके किनारे पहुँच गये। उनकी एक छोटी लड़की थी। वह लड़की मेहनत-मजदूरी करके थोड़ा कमाती थी और खुद दुःख सहन करके उनका गुजरान करती थी। परंतु धीरे-धीरे वह भी दुर्बल होती गयी। अब उससे मजदूरी नहीं हो सकती थी, इसलिये अन्नके बिना बूढ़े माँ-बापको मौतकी ओर बढ़ते देखकर उसके मनमें बड़ा ही दुःख हुआ। इतनेमें एक आदमीके मुँहसे उसने सुना कि एक दाँतके डाक्टरने यह विज्ञापन छपाया है कि 'जो आदमी अपने अच्छे-से-अच्छे दाँत देगा उसको हर एक दाँतकी कीमत तीन गिन्नी मिलेगी और दाँत वह खुद उखाड़ लेगा।'

वह भक्तिमती बालिका यह खबर सुनकर तुरंत ही अपने अगले दाँतको बेचनेके लिये डाक्टरके पास पहुँची। डाक्टरने उस छोटी लड़कीको देखकर पूछा—'तू किसलिये इतना दुःख और जिंदगीभरका नुकसान उठाने आयी है?' उसने अपना सारा किस्सा डाक्टरको कह सुनाया। माँ-बापके ऊपर

लड़कीका अगाध प्रेम देखकर डाक्टरकी आँखोंसे अश्रुधारा बहने लगी। उसने उसे तुरंत दस गिन्नी देकर जानेकी आज्ञा दे दी। लड़की उस डाक्टरका उपकार मानकर बहुत ही प्रसन्न हुई और बड़े ही उमंगसे माँ-बापकी सेवा करने लगी।

गुरुभक्त बालक एकलव्य

निषादराज हिरण्यधनुका पुत्र एकलव्य एक दिन हस्तिनापुरमें आया और उसने उस समयके धनुर्विद्याके सर्वश्रेष्ठ आचार्य, कौरव-पाण्डवोंके अस्त्र-गुरु द्रोणाचार्यजीके चरणोंमें दूरसे साष्टाङ्ग प्रणाम किया। अपनी वेष-भूषासे ही वह अपने वर्णकी पहचान दे रहा था। आचार्य द्रोणने जब उससे अपने पास आनेका कारण पूछा, तब उसने बताया—'मैं श्रीचरणोंके समीप रहकर धनुर्विद्याकी शिक्षा लेने आया हूँ।'

आचार्य संकोचमें पड़ गये। उस समय कौरव तथा पाण्डव बालक थे और आचार्य उन्हें शिक्षा दे रहे थे। एक

निषाद-बालकको अपने साथ शिक्षा देना राजकुमारोंको स्वीकार नहीं होता और यह उनकी मर्यादाके अनुरूप भी नहीं था। भीष्मपितामहको आचार्यने राजकुमारोंको शस्त्र-शिक्षा देनेका वचन दे रक्खा था। अतएव उन्होंने कहा—'बेटा एकलव्य! मुझे दुःख है कि मैं किसी द्विजेतर बालकको शस्त्र-शिक्षा नहीं दे सकता।'

एकलव्यने तो द्रोणाचार्यजीको मन-ही-मन गुरु मान लिया था। जिसे गुरु मान लिया, उसकी किसी भी बातको सुनकर रोष या दोष-दृष्टि करनेकी तो बात मनमें ही कैसे आती। निषादके उस छोटे बालकके मनमें निराशा भी नहीं हुई। उसने फिर आचार्यके सम्मुख भूमिमें लेटकर प्रणाम किया और कहा—'भगवन्! मैंने तो आपको गुरुदेव मान लिया है। मेरे किसी कामसे आपको संकोच हो, यह मैं नहीं चाहता। मुझपर आपकी कृपा रहनी चाहिये।'

बालक एकलव्य हस्तिनापुरसे लौटकर घर नहीं गया। वह वनमें चला गया और वहाँ उसने मिट्टीकी द्रोणाचार्यकी एक मूर्ति बनाकर स्थापित कर दी। उस मूर्तिको प्रणाम करके उसके सामने वह बाण-विद्याका अभ्यास करने लगा। ज्ञानके एकमात्र दाता तो भगवान् ही हैं। जहाँ अविचल श्रद्धा और दृढ़ निश्चय होता है, वहाँ वे सबके हृदयमें रहनेवाले श्रीहरि गुरुरूपमें या बिना बाहरी गुरुके भी ज्ञानका प्रकाश कर देते

और वे एकलव्यके आश्रमपर पहुँच गये । एकलव्य आचार्य-के चरणोंमें आकर गिर पड़ा । द्रोणाचार्यने पूछा—'सौम्य! तुमने बाणविद्याका इतना उत्तम अभ्यास किससे प्राप्त किया है ?'

नम्रतापूर्वक एकलव्यने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन् ! मैं तो आपके श्रीचरणोंका ही दास हूँ ।' उसने आचार्यकी उस मिट्टीकी मूर्तिकी ओर संकेत किया । द्रोणाचार्यने कुछ सोचकर कहा—'भद्र ! मुझे गुरुदक्षिणा नहीं दोगे ?'

'आज्ञा करें भगवन् !' एकलव्यने बहुत अधिक आनन्द-का अनुभव करते हुए कहा ।

द्रोणाचार्यने कहा—'मुझे तुम्हारे दाहिने हाथका अँगूठा चाहिये !'

दाहिने हाथका अँगूठा ! दाहिने हाथका अँगूठा न रहे तो बाण चलाया ही कैसे जा सकता है ? इतने दिनोंकी अभिलाषा, इतना बड़ा परिश्रम, इतना अभ्यास—सब व्यर्थ हुआ जा रहा था; किंतु एकलव्यके मुखपर खेदकी एक रेखातक नहीं आयी । उस वीर गुरुभक्त बालकने बायें हाथमें तलवार ली और तुरंत अपने दाहिने हाथका अँगूठा काटकर अपने हाथमें उठाकर गुरुदेवके सामने कर दिया उसने ।

भरे कण्ठसे द्रोणाचार्यने कहा—'बेटा! संसारमें धनुर्विद्या-के अनेकों महान् ज्ञाता हुए हैं और होंगे; किंतु मैं आशीर्वाद

हैं। महीनेपर महीने बीतते गये, एकलव्यका अभ्यास अखण्ड चलता गया और वह महान् धनुर्धर हो गया।

एक दिन द्रोणाचार्य अपने शिष्य पाण्डव एवं कौरवोंको बाणविद्याका अभ्यास करानेके लिये आखेट करने वनमें लिवा ले गये। संयोगवश इनके साथका एक कुत्ता भटकता हुआ एकलव्यके स्थानके पास पहुँच गया और काले रंगके तथा विचित्र वेषधारी एकलव्यको देखकर भूकने लगा। एकलव्यके केश बढ़ गये थे और उसके पास वस्त्रके स्थानपर बाघका चमड़ा ही था। वह उस समय अपना अभ्यास कर रहा था। कुत्तेके भूकनेसे बाधा पड़ते देख उसने सात बाण चलाकर कुत्तेका मुख बंद कर दिया। कुत्ता भागता हुआ अपने स्वामीके पास पहुँचा। सबने बड़े आश्चर्यसे देखा कि बाणोंसे कुत्तेको कहीं भी चोट नहीं लगी है; किंतु वे आड़े-तिरछे उसके मुखमें इस प्रकार फँसे हैं कि कुत्ता बोल नहीं सकता। बिना चोट पहुँचाये इस प्रकार कुत्तेके मुखमें बाण भर देना बाण चलानेका बहुत बड़ा कौशल है। पाण्डवोंमेंसे अर्जुन इस हस्तकौशलको देखकर बहुत चकित हुए। उन्होंने द्रोणाचार्यजीसे कहा—'गुरुदेव! आपने तो कहा था कि आप मुझे पृथ्वीपर सबसे बड़ा धनुर्धर बना देंगे; किंतु इतना हस्तकौशल तो मुझमें भी नहीं है।'

'चलो! हमलोग उसे ढूँढ़ें।' द्रोणाचार्यजीने सबको साथ लेकर उस बाण चलानेवालेको वनमें ढूँढ़ना प्रारम्भ किया

और वे एकलव्यके आश्रमपर पहुँच गये। एकलव्य आचार्यके चरणोंमें आकर गिर पड़ा। द्रोणाचार्यने पूछा—'सौम्य! तुमने बाणविद्याका इतना उत्तम अभ्यास किससे प्राप्त किया है?'

नम्रतापूर्वक एकलव्यने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! मैं तो आपके श्रीचरणोंका ही दास हूँ।' उसने आचार्यकी उस मिट्टीकी मूर्तिकी ओर संकेत किया। द्रोणाचार्यने कुछ सोचकर कहा—'भद्र! मुझे गुरुदक्षिणा नहीं दोगे?'

'आज्ञा करें भगवन्!' एकलव्यने बहुत अधिक आनन्दका अनुभव करते हुए कहा।

द्रोणाचार्यने कहा—'मुझे तुम्हारे दाहिने हाथका अँगूठा चाहिये!'

दाहिने हाथका अँगूठा! दाहिने हाथका अँगूठा न रहे तो बाण चलाया ही कैसे जा सकता है? इतने दिनोंकी अभिलाषा, इतना बड़ा परिश्रम, इतना अभ्यास—सब व्यर्थ हुआ जा रहा था; किंतु एकलव्यके मुखपर खेदकी एक रेखातक नहीं आयी। उस वीर गुरुभक्त बालकने बायें हाथमें तलवार ली और तुरंत अपने दाहिने हाथका अँगूठा काटकर अपने हाथमें उठाकर गुरुदेवके सामने कर दिया उसने।

भरे कण्ठसे द्रोणाचार्यने कहा—'बेटा! संसारमें धनुर्विद्याके अनेकों महान् ज्ञाता हुए हैं और होंगे; किंतु मैं आशीर्वाद

देता हूँ कि तुम्हारे इस महान् त्यागका सुयश सदा अमर रहेगा!'

गुरुभक्त शाहजादे

खलीफा मामूँ विद्वानोंका बड़ा आदर करते थे। उन्होंने अपने दो लड़कोंको पढ़ानेके लिये एक विद्वान् शिक्षक रक्खा। एक दिन वे शिक्षक किसी कामसे अपनी गद्दीपरसे उठे, तुरंत ही दोनों शाहजादे उनका जूता सीधा करके